॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

ब्रह्मविद्या उपनिषद

विषय सूची

॥अथ ब्रह्मविद्योपनिषत् ॥ 3
ब्रह्मविद्या उपनिषद 4
शान्तिपाठ 34

॥ श्री हरि ॥

॥अथ ब्रह्मविद्योपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

स्वाविद्यातत्कार्यजातं यद्विद्यापह्नवं गतम् ।
तद्ध्वंसविद्यानिष्पन्नं रामचन्द्रपदं भजे ॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ ब्रह्मविद्योपनिषत् ॥

ब्रह्मविद्या उपनिषद

प्रसादाद्ब्रह्मणस्तस्य विष्णोरद्भुतकर्मणः ।
रहस्यं ब्रह्मविद्याया ध्रुवाग्निं सम्प्रचक्षते ॥ १॥

अब 'ब्रह्मविद्या' नामक उपनिषद् का वर्णन करते हैं- अद्भुत एवं श्रेष्ठ कर्म करने वाले विष्णु रूप परब्रह्म की कृपा से ध्रुवाग्नि (अटल अग्नि या ज्ञान) के स्वरूप वाली ब्रह्मविद्या का रहस्य बताया जाता है॥१॥

ॐइत्येकाक्षरं ब्रह्म यदुक्तं ब्रह्मवादिभिः ।
शरीरं तस्य वक्ष्यामि स्थानं कालत्रयं तथा ॥ २॥

जिस प्रकार ब्रह्म को प्रणव के एक अक्षर (ॐ) के रूप में ब्रह्मज्ञानियों ने कहा है। उसी प्रकार उस (ब्रह्मविद्या) के शरीर, स्थान एवं तीन काल का वर्णन करता हूँ॥२॥

तत्र देवास्त्रयः प्रोक्ता लोका वेदास्त्रयोऽग्नयः ।
तिस्रो मात्रार्धमात्रा च त्र्यक्षरस्य शिवस्य तु ॥ ३॥

उस ओंकार में तीन देवता, तीन लोक, तीन वेद (ऋक्, यजुः, साम) और तीन अग्नियाँ हैं। शिव स्वरूप इस त्र्यक्षर की तीन और आधी मात्राएँ (अकार, उकार, मकार और अनुस्वार) हैं॥३॥

ऋग्वेदो गार्हपत्यं च पृथिवी ब्रह्म एव च ।
आकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः ॥ ४॥

ब्रह्मज्ञानियों ने 'अ' कार का शरीर ऋग्वेद, गार्हपत्य अग्नि, पृथिवी तत्त्व और ब्रह्मा को बतलाया है॥४॥

यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च दक्षिणाग्निस्तथैव च ।
विष्णुश्च भगवान्देव उकारः परिकीर्तितः ॥ ५॥

'उ' कार का शरीर यजुर्वेद, दक्षिणाग्नि, आकाशतत्त्व तथा भंगवान् विष्णु को बताया है॥५॥

सामवेदस्तथा द्यौश्चाहवनीयस्तथैव च ।
ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः ॥ ६॥

'म' कार का शरीर सामवेद, आहवनीय अग्नि, द्युलोक, ईश्वर और परमदेव को कहा गया है॥६॥

सूर्यमण्डलमध्येऽथ ह्यकारः शङ्खमध्यगः ।
उकारश्चन्द्रसंकाशस्तस्य मध्ये व्यवस्थितः ॥ ७॥

मकारस्त्वग्निसंकाशो विधूमो विद्युतोपमः ।
तिस्रो मात्रास्तथा ज्ञेया सोमसूर्याग्निरूपिणः ॥ ८॥

शंख के मध्य भाग की तरह 'अ' कार सूर्य मण्डल के मध्य में प्रतिष्ठित है और चन्द्रमा के सदृश 'उ' कार उसी चन्द्र मण्डल में स्थित है। निर्धूम (धूम रहित) अग्नि और विद्युत् में अग्नि सदृश 'म'कार प्रतिष्ठित है। इस तरह से तीन मात्राओं को सूर्य, चन्द्र, अग्नि के रूप में जानना चाहिए॥७-८॥

शिखा तु दीपसंकाशा तस्मिन्नुपरि वर्तते ।
अर्धमात्र तथा ज्ञेया प्रणवस्योपरि स्थिता ॥ ९॥

जिस तरह से दीपक की शिखा (लौ) ऊपर की ओर रहती है, इसी तरह से प्रणव के ऊपर की अर्द्धमात्रा की स्थिति को जानना चाहिए॥९॥

पद्मसूत्रनिभा सूक्ष्मा शिखा सा दृश्यते परा ।
सा नाडी सूर्यसंकाशा सूर्यं भित्त्वा तथापरा ॥ १०॥

द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीं भित्त्वा च मूर्धनि ।
वरदः सर्वभूतानां सर्वं व्याप्यावतिष्ठति ॥ ११॥

वह शिखा (लौ) पद्म सूत्र के सदृश दृष्टिगोचर होती है। सूर्य सदृश वह नाड़ी सूर्य का भेदन करके तथा बहत्तर हजार नाड़ियों को भेदन करके मूर्धा में प्रतिष्ठित होने वाली, सभी प्राणियों को वरदान प्रदान करने वाली एवं सबको व्याप्त करके स्थित रहने वाली है॥१०-११॥

कांस्यघण्टानिनादस्तु यथा लीयति शान्तये ।
ओङ्कारस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता ॥ १२॥

काँस्य धातु निर्मित घण्टे का शब्द जिस प्रकार शान्ति प्रदान करता हुआ विलीन हो जाता है, उसी प्रकार ॐ कार की साधना द्वारा सभी तरह की इच्छाएँ शान्त हो जाती हैं॥१२॥

यस्मिन्विलीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते ।
धियं हि लीयते ब्रह्म सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १३॥

जिस (तत्त्व) में शब्द विलीन हो जाता है, उसे परब्रह्म कहा गया है। जो बुद्धि ब्रह्म में विलीन हो जाती है, वह अमृत स्वरूप-ब्रह्म स्वरूप कही गई है॥१३॥

वायुः प्राणस्तथाकाशस्त्रिविधो जीवसंज्ञकः ।
स जीवः प्राण इत्युक्तो वालाग्रशतकल्पितः ॥ १४॥

वायु, तेज तथा आकाश इन तीनों से जीव की उपमा दी जाती है। इस जीव का प्रमाण (आकार) बाल की नोक का सौवाँ भाग (अति सूक्ष्म) कल्पित किया गया है॥१४॥

नाभिस्थाने स्थितं विश्वं शुद्धतत्त्वं सुनिर्मलम् ।
आदित्यमिव दीप्यन्तं रश्मिभिश्चाखिलं शिवम् ॥ १५॥

वह (जीव) विश्व (संज्ञक), शुद्ध तत्त्व, निर्मल स्वरूप नाभि प्रदेश (नाभिक-न्यूक्लियस) में प्रतिष्ठित है। वह सूर्य के सदृश सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करने वाला और कल्याणकारी है॥१५॥

सकारं च हकारं च जीवो जपति सर्वदा ।
नाभिरन्ध्राद्विनिष्क्रान्तं विषयव्याप्तिवर्जितम् ॥ १६॥

जीव (श्वासोच्छ्वास के रूप में) 'स' कार और 'ह' कार (सोऽहं का जप) सर्वदा करता है, इस के प्रभाव से वह जीव नाभिरंध्र से उत्क्रमण करता रहता है और उसे किसी प्रकार के विषय व्याप्त नहीं करते॥१६॥

तेनेदं निष्कलं विद्यात्क्षीरात्सर्पिर्यथा तथा ।
कारणेनात्मना युक्तः प्राणायामैश्च पञ्चभिः ॥ १७॥

दुग्ध से (मथकर निकाले गये) घृत की भाँति उस निष्कल (कला रहित), सबके कारण रूप आत्म तत्त्व को प्राण के पाँच आयामों द्वारा जाना जाता है। (देह के पाँचों तत्त्वों में प्राण तत्त्व प्रवाहित होते हैं। इन पाँचों में प्रवाहित प्राण के पाँच आयाम माने गये हैं)॥१७॥

चतुष्कला समायुक्तो भ्राम्यते च हृदिस्थितः ।
गोलकस्तु यदा देहे क्षीरदण्डेन वा हतः ॥ १८॥

जिस प्रकार मथने वाले दण्ड से दुग्ध को मथा जाता है, उसी प्रकार चार कलाओं से युक्त हृदय में स्थित प्राण तत्त्व को (श्वास-प्रश्वास को) शरीर में भ्रमण कराया जाता है॥१८॥

एतस्मिन्वसते शीघ्रमविश्रान्तं महाखगः ।
यावन्निश्वसितो जीवस्तावन्निष्कलतां गतः ॥ १९॥

इस (शरीर) में शीघ्रगामी महापक्षी (खग रूपी जीव) विश्राम न करता हुआ निवास करता है। जब श्वास रुक जाता है, तब जीव निष्कल (कला रहित) हो जाता है॥१९॥

नभस्थं निष्कलं ध्यात्वा मुच्यते भवबन्धनात्
अनाहतध्वनियुतं हंसं यो वेद हृद्गतम् ॥ २०॥

स्वप्रकाशचिदानन्दं स हंस इति गीयते ।
रेचकं पूरकं मुक्त्वा कुम्भकेन स्थितः सुधीः ॥ २१॥

नाभिकन्दे समौ कृत्वा प्राणापानौ समाहितः ।
मस्तकस्थामृतास्वादं पीत्वा ध्यानेन सादरम् ॥ २२॥

दीपाकारं महादेवं ज्वलन्तं नाभिमध्यमे ।
अभिषिच्यामृतेनैव हंस हंसेति यो जपेत् ॥ २३॥

जरामरणरोगादि न तस्य भुवि विद्यते ।
एवं दिने दिने कुर्यादणिमादिविभूतये ॥ २४॥

आकाश में स्थित निष्कल तत्त्व का चिन्तन करता हुआ, वह भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है। जो पुरुष हृदय में स्थित इस अनाहत ध्वनि युक्त, प्रकाशयुक्त, चिदानन्द 'हंस' को जानता है, वह हंस कहा जाता है। जो ज्ञानी पुरुष रेचक और पूरक को त्याग करके कुम्भक में स्थित होकर प्राण एवं अपान को एक करके मस्तक में प्रतिष्ठित अमृत को ध्यानपूर्वक आदर सहित पीता है तथा जो नाभि के मध्य में दीपक की तरह सुप्रकाशित महादेव पर अमृत का सिंचन करता हुआ 'हंस-हंस' का जप करता है, उसे पृथ्वी पर निवास करते हुए जरा, मरण, रोग आदि विकार नहीं होते तथा वह अणिमादि सिद्धियों-विभूतियों का अधिकारी हो जाता है॥२०-२४॥

ईश्वरत्वमवाप्नोति सदाभ्यासरतः पुमान् ।
बहवो नैकमार्गेण प्राप्ता नित्यत्वमागताः ॥ २५॥

जो ज्ञानी पुरुष सदा ही इस (ब्रह्मविद्या) के अभ्यास में लगा रहता है, उसे ईश्वरत्व की प्राप्ति हो जाती है। अनेक पुरुष इसी एक ही पथ के द्वारा नित्य पद को प्राप्त कर चुके हैं॥२५॥

हंसविद्यामृते लोके नास्ति नित्यत्वसाधनम् ।
यो ददाति महाविद्यां हंसाख्यां पारमेश्वरीम् ॥ २६॥

तस्य दास्यं सदा कुर्यात्प्रज्ञया परया सह ।
शुभं वाऽशुभमन्यद्वा यदुक्तं गुरुणा भुवि ॥ २७॥

तत्कुर्यादविचारेण शिष्यः सन्तोषसंयुतः ।

हंसविद्यामिमां लब्ध्वा गुरुशुश्रूषया नरः ॥ २८॥

हंस रूपी विद्यामृत के सदृश नित्यत्वे को इस जगत् में और कोई साधन नहीं है। जो ज्ञानी मनुष्य इस हंस नाम की परम पावन परमेश्वरी महाविद्या को प्रदान करता है, उसकी सर्वदा ज्ञानपूर्वक प्रजा के सहित सेवा करनी चाहिए। गुरु जो कुछ शुभ या अशुभ आदेश दे,उसका पालन शिष्य को बिना कुछ विचार किये सन्तोष वृत्ति से सतत करना चाहिए। इस हंस विद्या को गुरु से प्राप्त करके मनुष्य सदा ही गुरु की शुश्रूषा करे॥२६-२८॥

आत्मानमात्मना साक्षाद्ब्रह्म बुद्ध्वा सुनिश्चलम् ।
देहजात्यादिसम्बन्धान्वर्णाश्रमसमन्वितान् ॥ २९॥

वेदशास्त्राणि चान्यानि पदपांसुमिव त्यजेत् ।
गुरुभक्तिं सदा कुर्याच्छ्रेयसे भूयसे नरः ॥ ३०॥

गुरु की सहायता से आत्मा द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करके तथा ब्रह्म को निश्चयपूर्वक बुद्धि द्वारा जान करके वर्णाश्रम, जाति आदि के सम्बन्ध एवं वेद तथा शास्त्रों की बातों को नि:संकोच भाव से त्याग कर, गुरु की सदा ही सेवा-शुश्रूषा करे। इसी से मनुष्य का सच्चा कल्याण होता है॥२९-३०॥

गुरुरेव हरिः साक्षान्नान्य इत्यब्रवीच्छ्रुतिः ॥ ३१॥

गुरु ही स्वयं साक्षात् हरि हैं, कोई और अन्य नहीं, ऐसा श्रुति का कथन है॥३१॥

श्रुत्या यदुक्तं परमार्थमेव तत्संशयो नात्र ततः समस्तम् ।
श्रुत्या विरोधे न भवेत्प्रमाणं भवेदनर्थाय विना प्रमाणम् ॥ ३२॥

श्रुति का कथन संशयरहित परमार्थ रूप ही है। श्रुति का विरोध होने पर अन्य और कुछ भी प्रमाण नहीं है। जो बिना प्रमाण होगा, वह अनर्थकारी अर्थात् हानिकारक होगा॥३२॥

देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहवर्जितः ।
आप्तोपदेशगम्योऽसौ सर्वतः समवस्थितः ॥ ३३॥

देह में स्थित (चेतना) को सकल (कला या विभागयुक्त) तथा देहरहित (परम चेतना) को 'निष्कल' (कलारहित) जानना चाहिए। आप्त गुरु के उपदेश से ज्ञात होने वाला यह तत्त्व सर्वत्र समभाव से प्रतिष्ठित है॥३३॥

हंसहंसेति यो ब्रूयाद्धंसो ब्रह्मा हरिः शिवः ।
गुरुवक्त्रात्तु लभ्येत प्रत्यक्षं सर्वतोमुखम् ॥ ३४॥

जो ज्ञानी पुरुष हंस-हंस बोलता (सोऽहं साधनारत रहता) है, वह ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव का कल्याणकारी रूप है। वह गुरु के उपदेश से सर्वतोमुख वाले (सर्वत्र व्याप्त) ब्रह्म को जानने में समर्थ हो सकता है॥३४॥

तिलेषु च यथा तैलं पुष्पे गन्ध इवाश्रितः ।
पुरुषस्य शरीरेऽस्मिन्स बाह्याभ्यन्तरे तथा ॥ ३५॥

जिस प्रकार तिलों में तैल एवं पुष्पों में गंध विद्यमान रहता है, उसी प्रकार पुरुष के इस शरीर में बाहर-भीतर वही ब्रह्म विद्यमान रहता है॥३५॥

उल्काहस्तो यथालोके द्रव्यमालोक्य तां त्यजेत् ।
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य पश्चाज्ज्ञानं परित्यजेत् ॥ ३६॥

जिस प्रकार मशाल के प्रकाश से द्रव्य (वस्तु) को देख करके मशाल का परित्याग कर दिया जाता है, उसी प्रकार ज्ञान के माध्यम से ज्ञातव्य विषय की प्राप्ति हो जाने पर ज्ञान का परित्याग कर दिया जाता है॥३६॥

पुष्पवत्सकलं विद्याद्गन्धस्तस्य तु निष्कलः ।
वृक्षस्तु सकलं विद्याच्छाया तस्य तु निष्कला ॥ ३७॥

'सकल' अर्थात् कलायुक्त को पुष्प की भाँति एवं उसकी गंध को 'निष्कल' (कलारहित) की भाँति माने अथवा 'सकल' वृक्ष के सदृश है और उसकी छाया निष्कल (कलारहित) है॥३७॥

निष्कलः सकलो भावः सर्वत्रैव व्यवस्थितः ।
उपायः सकलस्तद्वदुपेयश्चैव निष्कलः ॥ ३८॥

(ऊपर कहे अनुसार) निष्कल एवं सकल भाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। कला सम्पन्न वस्तु उपाय या साधन है तथा उपेय या साध्य (ब्रह्म) कलारहित है॥३८॥

सकले सकलो भावो निष्कले निष्कलस्तथा ।
एकमात्रो द्विमात्रश्च त्रिमात्रश्चैव भेदतः ॥ ३९॥

अर्धमात्र परा ज्ञेया तत ऊर्ध्वं परात्परम् ।
पञ्चधा पञ्चदैवत्यं सकलं परिपठ्यते ॥ ४०॥

सकल में कलायुक्त भाव तथा निष्कल (अखण्ड-निर्विकार) में निष्कल भाव रहता है। (वह सकल) एक मात्रा, दो मात्रा एवं तीन मात्रा के भेद वाला अर्धमात्रा को पर मानना चाहिए, उसके ऊपर परात्पर है। (इस प्रकार) सकल पाँच दैवत वाला पाँच प्रकार का (पंच प्राण एवं पंचभूतात्मक) जानना चाहिए॥३९-४०॥

ब्रह्मणो हृदयस्थानं कण्ठे विष्णुः समाश्रितः ।
तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटस्थो महेश्वरः ॥ ४१॥

ब्रह्म का स्थान हृदय में है, विष्णु कण्ठ में निवास करते हैं, तालु में भगवान् रुद्र तथा ललाट (मस्तक) में महेश्वर स्थित हैं॥४१॥

नासाग्रे अच्युतं विद्यात्तस्यान्ते तु परं पदम् ।
परत्वात्तु परं नास्तीत्येवं शास्त्रस्य निर्णयः ॥ ४२॥

नासिका के अग्रभाग में अच्युत (सदाशिव) तथा उसके अन्तिम भाग (भ्रूमध्य) में परम पद को प्रतिष्ठित जानना चाहिए। (उस) पर (श्रेष्ठ) से पर (श्रेष्ठ) और कुछ भी नहीं है, ऐसा शास्त्रों का निर्णय है॥४२॥

देहातीतं तु तं विद्यान्नासाग्रे द्वादशाङ्गुलम् ।
तदन्तं तं विजानीयात्तत्रस्थो व्यापयेत्प्रभुः ॥ ४३॥

उस देहातीत को नासिका के अग्र भाग से बारह अंगुल ऊपर जानना चाहिए तथा उसके अन्तिम भाग (सहस्रार चक्र) में व्यापक प्रभु को स्थित जानना चाहिए॥४३॥

मनोऽप्यन्यत्र निक्षिप्तं चक्षुरन्यत्र पातितम् ।
तथापि योगिनां योगो ह्यविच्छिन्नः प्रवर्तते ॥ ४४॥

मन चाहे इधर-उधर चला जाये और चाहे नेत्र अन्यत्र ही देखते रहें, तब भी योगियों का योग अविच्छिन्न भाव से चलता रहता है॥४४॥

एतत्तु परमं गुह्यमेतत्तु परमं शुभम् ।
नातः परतरं किञ्चिन्नातः परतरं शुभम् ॥ ४५॥

यह सबसे गूढ़ रहस्य है,यही सर्वाधिक श्रेष्ठ है, इससे बढ़कर तथा इससे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है॥४५॥

शुद्धज्ञानामृतं प्राप्य परमाक्षरनिर्णयम् ।
गुह्याद्गुह्यतमं गोप्यं ग्रहणीयं प्रयत्नतः ॥ ४६॥

शुद्ध ज्ञानामृत को प्राप्त करके परम अक्षर तत्त्व का निर्णय करना चाहिए। यह गुह्य से गुह्य एवं गोपनीय है, जो प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करने योग्य है॥४६॥

नापुत्राय प्रदातव्यं नाशिष्याय कदाचन ।
गुरुदेवाय भक्ताय नित्यं भक्तिपराय च ॥ ४७॥
प्रदातव्यमिदं शास्त्रं नेतरेभ्यः प्रदापयेत् ।
दातास्य नरकं याति सिद्ध्यते न कदाचन ॥ ४८॥

यह ब्रह्मविद्या न तो अपुत्र को देनी चाहिए और न ही अशिष्य को कभी देनी चहिए। यह विद्या उसी को देनी चाहिए, जो गुरु का सच्चा भक्त हो। सदा नित्य भक्ति परायण रहे, इस शास्त्र विद्या को किसी अन्य को नहीं देना चाहिए। यदि कोई देगा भी, तो वह देने वाला नरक को जायेगा और सिद्धि भी नहीं प्राप्त होगी॥४७-४८॥

गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ।
यत्र तत्र स्थितो ज्ञानी परमाक्षरवित्सदा ॥ ४९॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी कोई भी हो एवं कहीं भी निवास करता हो, परम अक्षर तत्त्व को जानने वाला सर्वदा ज्ञानी ही होता है॥४९॥

विषयी विषयासक्तो याति देहान्तरे शुभम् ।
ज्ञानादेवास्य शास्त्रस्य सर्वावस्थोऽपि मानवः ॥ ५०॥

यदि कोई मनुष्य विषय-भोगी, विषयों में आसक्त रहने वाला हो, तब भी वह इस शास्त्र के ज्ञान से देहान्तर (मृत्यु) के पश्चात् शुभ गति को प्राप्त हो जाता है॥५०॥

ब्रह्महत्याश्वमेधाद्यैः पुण्यपापैर्न लिप्यते ।
चोदको बोधकश्चैव मोक्षदश्च परः स्मृतः ॥ ५१॥

इत्येषं त्रिविधो ज्ञेय आचार्यस्तु महीतले ।
चोदको दर्शयेन्मार्गं बोधकः स्थानमाचरेत् ॥ ५२॥

मोक्षदस्तु परं तत्त्वं यज्ज्ञात्वा परमश्नुते ।
प्रत्यक्षयजनं देहे संक्षेपाच्छृणु गौतम ॥ ५३॥

जो ब्रह्महत्या के पाप तथा अश्वमेधादि के पुण्य में लिप्त नहीं रहते हैं, ऐसे श्रेष्ठ ज्ञानी प्रेरक, बोधक एवं मोक्षदाता माने गये हैं। संसार में आचार्य इन्हीं तीन श्रेणियों के कहे गये हैं। प्रेरक मार्ग दिखलाता है, बोधक यथार्थ बोध (ज्ञान का आचरण) कराता है, मोक्षप्रदाता-परम श्रेष्ठ तत्त्व प्रदान करता है, जिसे जानकर परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती है। हे गौतम ! अब तुम शरीर में यजन के सन्दर्भ में श्रवण करो॥५१-५३॥

तेनेष्ट्वा स नरो याति शाश्वतं पदमव्ययम् ।
स्वयमेव तु सम्पश्येद्देहे बिन्दुं च निष्कलम् ॥ ५४॥

इस (कृत्य) के करने से मनुष्य शाश्वत, अव्यय पद को प्राप्त कर लेता है तथा स्वयं अपने शरीर (देह) के अन्दर ही निष्कल (कलारहित) और बिन्दु को देख लेता है॥५४॥

अयने द्वे च विषुवे सदा पश्यति मार्गवित् ।
कृत्वायामं पुरा वत्स रेचपूरककुम्भकान् ॥ ५५॥

दोनों अयनों के सदृश दिन-रात्रि के एक-एक प्रहर तक रेचक,पूरक तथा कुम्भक प्राणायाम करे॥५५॥

पूर्वं चोभयमुच्चार्य अर्चयेत्तु यथाक्रमम् ।
नमस्कारेण योगेन मुद्रयारभ्य चार्चयेत् ॥ ५६॥

सर्वप्रथम दोनों (ॐ तथा हंस) का उच्चारण करके यथाक्रमानुसार पूजन सम्पन्न करे। (हंसः, सोऽहम्) नमस्कार योग के द्वारा तथा (शाम्भवी, खेचरी आदि) मुद्राओं के माध्यम से अर्चन-पूजन करे॥५६॥

सूर्यस्य ग्रहणं वत्स प्रत्यक्षयजनं स्मृतम् ।
ज्ञानात्सायुज्यमेवोक्तं तोये तोयं यथा तथा ॥ ५७॥

हे वत्स ! सूर्य का (पूजन हेतु) ग्रहण प्रत्यक्ष यजन (सोऽहम् साधना रूप में) कहा गया है। जिस प्रकार जल में जल होता है, उसी प्रकार से सायुज्यपद सद्ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त होता है॥५७॥

एते गुणाः प्रवर्तन्ते योगाभ्यासकृतश्रमैः ।
तस्माद्योगं समादाय सर्वदुःखबहिष्कृतः ॥ ५८॥

योग के अभ्यास में जो श्रम किया जाता है, उसमें इतने गुण हैं कि इस क्रिया द्वारा उद्योगपूर्वक सभी दुःखों को दूर करने की सतत चेष्टा करनी चाहिए॥५८॥

योगध्यानं सदा कृत्वा ज्ञानं तन्मयतां व्रजेत् ।
ज्ञानात्स्वरूपं परमं हंसमन्त्रं समुच्चरेत् ॥ ५९॥

सदा ही इस (ब्रह्मविद्या) के मन्त्र का जप करते हुए योग रूपी चिन्तन के द्वारा तन्मयता को प्राप्त करना चाहिए। ज्ञान के माध्यम से ही (ब्रह्म का) परम स्वरूप (हंस मन्त्र) प्राप्त किया जाता है॥५९॥

प्राणिनां देहमध्ये तु स्थितो हंसः सदाच्युतः ।
हंस एव परं सत्यं हंस एव तु शक्तिकम् ॥ ६०॥

प्राणियों के शरीर में अच्युतरूपी हंस (चेतन जीव) सदा ही प्रतिष्ठित रहता है। हंस ही परम सत्य है। तथा हंस ही शक्ति का स्वरूप है॥६०॥

हंस एव परं वाक्यं हंस एव तु वादिकम् ।
हंस एव परो रुद्रो हंस एव परात्परम् ॥ ६१॥

हंस ही परम वाक्य है, हंस ही वेदों का सार है। हंस ही परम रुद्र है और हंस ही परमात्मा है॥६१॥

सर्वदेवस्य मध्यस्थो हंस एव महेश्वरः ।
पृथिव्यादिशिवान्तं तु अकाराद्याश्च वर्णकाः ॥ ६२॥

कूटान्ता हंस एव स्यान्मातृकेति व्यवस्थिताः ।
मातृकारहितं मन्त्रमादिशन्ते न कुत्रचित् ॥ ६३॥

सभी देवताओं के मध्य में हंस ही परमेश्वर है। पृथ्वी से लेकर भगवान् शिव तक तथा 'अ' से लेकर 'क्ष' तक हंस ही वर्ण-मात्राओं की तरह से स्थित है। मातृका (वर्ण) विहीन मन्त्र का उपदेश कहीं भी नहीं दिया जाता है॥६२-६३॥

हंसज्योतिरनूपम्यं मध्ये देवं व्यवस्थितम् ।
दक्षिणामुखमाश्रित्य ज्ञानमुद्रां प्रकल्पयेत् ॥ ६४॥

सदा समाधिं कुर्वीत हंसमन्त्रमनुस्मरन् ।
निर्मलस्फटिकाकारं दिव्यरूपमनुत्तमम् ॥ ६५॥

हंस की अनुपम ज्योति देवताओं के मध्य में प्रतिष्ठित है। दक्षिणामुख (भगवान् शिव) का आश्रय लेकर ज्ञान मुद्रा करे तथा सर्वदा समाधि अवस्था में हंस का चिन्तन करता रहे और निर्मल स्फटिक के समान उत्तम दिव्य रूप का ध्यान करे॥६४-६५॥

मध्यदेशे परं हंसं ज्ञानमुद्रात्मरूपकम् ।
प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः ॥ ६६॥

पञ्चकर्मेन्द्रियैरुक्ताः क्रियाशक्तिबलोद्यताः ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ ६७॥

पञ्चज्ञानेन्द्रियैर्युक्ता ज्ञानशक्तिबलोद्यताः ।
पावकः शक्तिमध्ये तु नाभिचक्रे रविः स्थितः ॥ ६८॥

मध्य देश में ज्ञान-मुद्रा के स्वरूप वाले परम हंस का सदैव ध्यान करना चाहिए। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान- ये पाँच वायु (प्राण) तथा पञ्च कर्मेन्द्रियों से सम्पन्न क्रियाशक्ति अधिक बलवती होती है। नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और पञ्च ज्ञानेन्द्रियों से सम्पन्न ज्ञानशक्ति अत्यन्त बलवती होती है। (कुण्डलिनी) शक्ति के बीच में अग्नि और नाभिचक्र में रवि प्रतिष्ठित रहता है॥६६-६८॥

बन्धमुद्रा कृता येन नासाग्रे तु स्वलोचने ।
अकारेवह्निरित्याहुरुकारे हृदि संस्थितः ॥ ६९॥

मकारे च भ्रुवोर्मध्ये प्राणशक्त्या प्रबोधयेत् ।
ब्रह्मग्रन्थिरकारे च विष्णुग्रन्थिर्हृदि स्थितः ॥ ७०॥

सर्वप्रथम बन्ध एवं मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। नासाग्र एवं अपने दोनों नेत्रों में 'अ' कार अग्नि, हृदय में 'उ' कार अग्नि और भृकुटियों के मध्य में 'म' कार अग्नि प्रतिष्ठित कही गयी है। इनमें प्राणशक्ति को संयुक्त करे। ब्रह्मग्रन्थि ॐकार (नासाग्र एवं नेत्र) में और विष्णुग्रन्थि हृदय में स्थित कही गयी है॥६९-७०॥

रुद्रग्रन्थिर्भ्रुवोर्मध्ये भिद्यतेऽक्षरवायुना ।
अकारे संस्थितो ब्रह्मा उकारे विष्णुरास्थितः ॥ ७१॥

मकारे संस्थितो रुद्रस्ततोऽस्यान्तः परात्परः ।
कण्ठं सङ्कुच्य नाड्यादौ स्तम्भिते येन शक्तितः ॥ ७२॥

रसना पीड्यमानेयं षोडशी वोर्ध्वगामिनि ।
त्रिकूटं त्रिविधा चैव गोलाखं निखरं तथा ॥ ७३॥

त्रिशङ्खवज्रमोङ्कारमूर्ध्वनालं भ्रुवोर्मुखम् ।
कुण्डलीं चालयन्प्राणान्भेदयन्शशिमण्डलम् ॥ ७४॥

रुद्र ग्रन्थि भृकुटियों के मध्य में स्थित है। यह (तीनों) ग्रन्थि अक्षर वायु (हंस ज्ञान) से भेदन की जाती है। 'अ' कार में ब्रह्मा का, 'उ' कार में विष्णु का तथा 'म' कार में रुद्र का स्थान बताया गया है, उसके अन्त में परात्पर ब्रह्म है। कण्ठ का संकोचन (जालन्धरबन्ध) करके आदि शक्ति (कुण्डलिनी शक्ति) को स्तम्भित करे,तत्पश्चात् जिह्वा को दबाकर सोलह आधार वाली, ऊर्ध्वगामिनी, त्रिकूट (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना तीनों के मिलन स्थल) वाली, तीन प्रकार वाली, ब्रह्मरन्ध्र को जानने वाली अति सूक्ष्म सुषुम्ना नाड़ी को एवं त्रिशंख (सुख, दुःख, सुख-दुःख तीनों को खाने वाले),वज्र (अयोगी द्वारा दुर्भेद्य), ओंकार युक्त, ऊर्ध्वनाल, भृकुटियों की ओर गमन करने वाली कुण्डली शक्ति तथा प्राणों को चालित करके शशि मण्डल का भेदन करे॥७१-७४॥

साधयन्वज्रकुम्भानि नवद्वाराणि बन्धयेत् ।
सुमनःपवनारूढः सरागो निर्गुणस्तथा ॥ ७५॥

नव द्वारों को बन्द करके वज्र कुम्भक (उज्जायी, शीतली आदि प्राणायाम) का साधन करना चाहिए। मन को प्रसन्न रखकर,सहज स्थिति में निर्गुण होकर पवन पर आरूढ़ (प्राणायाम परायण) होना चाहिए॥७५॥

ब्रह्मस्थाने तु नादः स्याच्छाकिन्यामृतवर्षिणी ।
षट्चक्रमण्डलोद्धारं ज्ञानदीपं प्रकाशयेत् ॥ ७६॥

इस (ध्यान) से ब्रह्मस्थान में नाद सुनाई पड़ने लगता है तथा शंकिनी नाड़ी से अमृत की वर्षा होने लगती है और षट्चक्र मण्डल का भेदन होने से ज्ञानरूपी दीपक प्रकाश से युक्त हो जाता है॥७६॥

सर्वभूतस्थितं देवं सर्वेशं नित्यमर्चयेत् ।
आत्मरूपं तमालोक्य ज्ञानरूपं निरामयम् ॥ ७७॥

समस्त भूत-प्राणियों में प्रतिष्ठित परम देव का सदा ही पूजन करना चाहिए। वे आत्मस्वरूप, ज्ञानस्वरूप तथा व्याधि से रहित हैं॥७७॥

दृश्यन्तं दिव्यरूपेण सर्वव्यापी निरञ्जनः ।
हंस हंस वदेद्वाक्यं प्राणिनां देहमाश्रितः ।

सप्राणापानयोर्ग्रन्थिरजपेत्यभिधीयते ॥ ७८॥

सहस्रमेकं द्वयुतं षट्शतं चैव सर्वदा ।
उच्चरन्पठितो हंसः सोऽहमित्यभिधीयते ॥ ७९॥

उन सर्वव्यापी निरञ्जन के दिव्य रूप का दर्शन करके हंस-हंस का निरन्तर जप करते रहना चाहिए। प्राणियों की देह (शरीर) में स्थित प्राण और अपान की ग्रन्थि को अजपा जप कहा जाता है, इससे नित्य प्रति इक्कीस हजार छः सौ बार जप करता हुआ हंस 'सोऽहम्' के रूप में परिणत हो जाता है॥७८-७९॥

पूर्वभागे ह्यधोलिङ्गं शिखिन्यां चैव पश्चिमम् ।
ज्योतिर्लिङ्गं भ्रुवोर्मध्ये नित्यं ध्यायेत्सदा यतिः ॥ ८०॥

साधक को सदा ही कुण्डलिनी के पूर्व में अधोलिङ्ग का, शिखा स्थान में पश्चिमलिङ्ग का, भृकुटियों के मध्य में ज्योतिर्लिङ्ग का ध्यान करना चाहिए॥८०॥

अच्युतोऽहमचिन्त्योऽहमतर्क्योऽहमजोऽस्म्यहम् ।
अप्राणोऽहमकायोऽहमनङ्गोऽस्म्यभयोऽस्म्यहम् ॥ ८१॥

मैं अच्युत हूँ, मैं अचिन्त्य अर्थात् चिन्तन से परे हूँ, मैं तर्क की सीमा से बाहर हूँ, मैं अजन्मा हूँ, मैं व्रणरहित (स्वस्थ) हूँ, मैं काया से विहीन हूँ, मैं अनङ्ग (अंगरहित) एवं भय से रहित हूँ॥८१॥

अशब्दोऽहमरूपोऽहमस्पर्शोऽस्म्यहमद्वयः ।
अरसोऽहमगन्धोऽहमनादिरमृतोऽस्म्यहम् ॥ ८२॥

मैं शब्दरहित हूँ, रूप रहित (आकाररहित), स्पर्श से परे एवं अद्वय हूँ। मैं रस से विहीन (रसरहित) हूँ, गन्ध से रहित तथा अनादि अमृत का रूप हूँ॥८२॥

अक्षयोऽहमलिङ्गोऽहमजरोऽस्म्यकलोऽस्म्यहम् ।
अप्राणोऽहममूकोऽहमचिन्त्योऽस्म्यकृतोऽस्म्यहम् ॥ ८३॥

मैं अक्षय (क्षयरहित) हूँ, लिङ्गरहित हूँ, अजर एवं निष्कल अर्थात् कलारहित हूँ। मैं अमूक (वाक्-शक्तियुक्त) एवं प्राणरहित हूँ, अचिन्त्य (चिन्तन से परे) तथा मैं ही क्रियारहित हूँ॥८३॥

अन्तर्याम्यहमग्राह्योऽनिर्देश्योऽहमलक्षणः ।
अगोत्रोऽहमगात्रोऽहमचक्षुष्कोऽस्म्यवागहम् ॥ ८४॥

मैं अन्तर्यामी हैं, अग्राह्य अर्थात् पकड़ने में न आने वाला हूँ, मैं निर्देशरहित एवं लक्षणरहित हूँ। मैं कुल, गोत्र एवं शरीररहित हूँ, मैं नेत्रेन्द्रिय रहित हूँ तथा वागिन्द्रिय रहित भी हूँ॥८४॥

अदृश्योऽहमवर्णोऽहमखण्डोऽस्म्यहमद्भुतः ।
अश्रुतोऽहमदृष्टोऽहमन्वेष्टव्योऽमरोऽस्म्यहम् ॥ ८५॥

मैं अदृश्य हूँ, अवर्ण हूँ, अखण्ड एवं अद्‌भुत हूँ। मैं अश्रुत हूँ, अदृष्ट हूँ, अन्वेषण योग्य एवं अमर हूँ॥८५॥

अवायुरप्यनाकाशोऽतेजस्कोऽव्यभिचार्यहम् ।
अमतोऽहमजातोऽहमतिसूक्ष्मोऽविकार्यहम् ॥ ८६॥

मैं वायुरहित, आकाश तत्त्व से रहित, तेजो विहीन, व्यभिचार (नियमोल्लंघन) से रहित, अज्ञेय, अजन्मा (जन्मरहित), सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं अविकारी (विकार रहित) हूँ॥८६॥

अरजस्कोऽतमस्कोऽहमसत्त्वोस्म्यगुणोऽस्म्यहम् ।
अमायोऽनुभवात्माहमनन्योऽविषयोऽस्म्यहम् ॥ ८७॥

मैं सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण से रहित हूँ। गुणों से अतीत हूँ, मायारहित, अनुभव स्वरूप हूँ, अनन्य तथा अविषय अर्थात् विषयरहित हूँ॥८७॥

अद्वैतोऽहमपूर्णोऽहमबाह्योऽहमनन्तरः ।
अश्रोतोऽहमदीर्घोऽहमव्यक्तोऽहमनामयः ॥ ८८॥

मैं अद्वैत हूँ, पूर्ण हूँ। मैं न बाहर हूँ और न ही भीतर हूँ, मैं श्रोत्ररहित हूँ, अदीर्घ हूँ, अव्यक्त हूँ और मैं व्याधिरहित भी हूँ॥८८॥

अद्वयानन्दविज्ञानघनोऽस्म्यहमविक्रियः ।
अनिच्छोऽहमलेपोऽहमकर्तास्म्यहमद्वयः ॥ ८९॥

मैं अद्वय, आनन्दरूप, विज्ञानघन एवं अविकारी अर्थात् विकार रहित हूँ। मैं इच्छा रहित हूँ, अलेप (लिप्त न रहने वाला) हूँ। मैं ही अकर्ता तथा अद्वैत भी मैं ही हूँ॥८९॥

अविद्याकार्यहीनोऽहमवाग्रसनगोचरः ।
अनल्पोऽहमशोकोऽहमविकल्पोऽस्म्यविज्वलन् ॥ ९०॥

मैं अविद्यायुक्त कार्य से रहित हूँ, मैं मन एवं वाणी से अगोचर अर्थात् परे हूँ। मैं अनल्प (अल्परहित) हूँ, शोकरहित हूँ, विकल्परहित एवं विशिष्ट अग्नि से रहित हूँ॥९०॥

आदिमध्यान्तहीनोऽहमाकाशसदृशोऽस्म्यहम् ।
आत्मचैतन्यरूपोऽहमहमानन्दचिद्घनः ॥ ९१॥

मैं आदि, मध्य एवं अन्त से विहीन हूँ। मैं आकाश के समान हूँ। मैं आत्म चैतन्य रूप हूँ तथा आनन्द चेतन घन के सदृश हूँ॥९१॥

आनन्दामृतरूपोऽहमात्मसंस्थोहमन्तरः ।

आत्मकामोहमाकाशात्परमात्मेश्वरोस्म्यहम् ॥ ९२॥

मैं आनन्द रूप, अमृत स्वरूप हूँ, मैं आत्म-संस्थित हूँ, अन्तर (सभी की अन्तरात्मा) भी मैं ही हूँ। | (मैं) आत्मकाम हूँ तथा आकाश से (अधिक व्यापक) परमात्मा स्वरूप परमेश्वर मैं ही हूँ॥९२॥

ईशानोस्म्यहमीड्योऽहमहमुत्तमपूरुषः ।
उत्कृष्टोऽहमुपद्रष्टा अहमुत्तरतोऽस्म्यहम् ॥ ९३॥

मैं ईशान हूँ, पूजनीय हूँ, उत्तम पुरुष हूँ। मैं उत्कृष्ट हूँ, उपद्रष्टा (साक्षीरूप) हूँ तथा परे से परे हूँ॥९३॥

केवलोऽहं कविः कर्माध्यक्षोऽहं करणाधिपः ।
गुहाशयोऽहं गोप्ताहं चक्षुषश्चक्षुरस्म्यहम् ॥ ९४॥

मैं केवल हूँ, कवि हूँ, कर्माध्यक्ष हूँ। मैं ही कारणों का कारण अर्थात् अधिपति हूँ, मैं गुप्त आशय हूँ, गुप्त रखने वाला हूँ एवं मैं ही नेत्रों का भी नेत्र हूँ॥९४॥

चिदानन्दोऽस्म्यहं चेता चिद्घनश्चिन्मयोऽस्म्यहम् ।
ज्योतिर्मयोऽस्म्यहं ज्यायाञ्ज्योतिषां ज्योतिरस्म्यहम् ॥ ९५॥

मैं चिदानन्द हूँ, चेतना प्रदान करने वाला हूँ, चिद्घन एवं चिन्मय स्वरूप हूँ। मैं ज्योतिर्मय हूँ और ज्योतियों में सर्वश्रेष्ठ ज्योतिरूप मैं ही हूँ॥९५॥

तमसः साक्ष्यहं तुर्यतुर्योऽहं तमसः परः ।
दिव्यो देवोऽस्मि दुर्दर्शो दृष्टाध्यायो ध्रुवोऽस्म्यहम् ॥ ९६॥

मैं अन्धकार में साक्ष्य स्वरूप हूँ, तुर्य का भी तुर्य हूँ, अन्धकार से परे हूँ, मैं दिव्य देवस्वरूप हूँ, दुर्दर्श और दृष्टि का आधार ध्रुव (शाश्वत) हूँ॥९६॥

नित्योऽहं निरवद्योऽहं निष्क्रियोऽस्मि निरञ्जनः ।
निर्मलो निर्विकल्पोऽहं निराख्यातोऽस्मि निश्चलः ॥ ९७॥

मैं नित्य हूँ, निर्दोष हूँ, क्रियारहित तथा निरञ्जन हूँ। मैं निर्मल, निर्विकल्प, निराख्यात और निश्चल हूँ॥९७॥

निर्विकारो नित्यपूतो निर्गुणो निःस्पृहोऽस्म्यहम् ।
निरिन्द्रियो नियन्ताहं निरपेक्षोऽस्मि निष्कलः ॥ ९८॥

मैं निर्विकार (विकार रहित), नित्यपूत (सदैव पवित्र), निर्गुण, निस्पृह हूँ। मैं इन्द्रियों से रहित, नियन्ता, निरपेक्ष एवं निष्कल (कलारहित) हूँ॥९८॥

पुरुषः परमात्माहं पुराणः परमोऽस्म्यहम् ।
परावरोऽस्म्यहं प्राज्ञः प्रपञ्चोपशमोऽस्म्यहम् ॥ ९९॥

मैं परमात्म पुरुष हूँ, परम पुराण हूँ। मैं परावर(ज्ञानसमुद्र)हूँ, प्राज्ञ-प्रपञ्च का शमन करने वाला भी हूँ॥९९॥

परामृतोऽस्म्यहं पूर्णः प्रभुरस्मि पुरातनः ।
पूर्णानन्दैकबोधोऽहं प्रत्यगेकरसोऽस्म्यहम् ॥ १००॥

मैं परामृत तथा पुरातन पूर्ण प्रभु हूँ। मैं पूर्णानन्द, एक बोध रूप हूँ तथा प्रत्यग् (अन्तरात्मा) एवं एकरस (सर्वदा एक रूप) भी मैं ही हूँ॥१००॥

प्रज्ञातोऽहं प्रशान्तोऽहं प्रकाशः परमेश्वरः ।
एकदा चिन्त्यमानोऽहं द्वैताद्वैतविलक्षणः ॥ १०१॥

मैं प्रज्ञाता (विशेष ज्ञाता) हूँ, मैं प्रशान्त हूँ तथा (मैं ही) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर हूँ। द्वैत एवं अद्वैत के लक्षणों से भिन्न मैं ही एक चिन्तन-मनन करने योग्य हूँ॥१०१॥

बुद्धोऽहं भूतपालोऽहं भारूपो भगवानहम् ।
महाज्ञेयो महानस्मि महाज्ञेयो महेश्वरः ॥ १०२॥

मैं बुद्धि हूँ, मैं ही भूतपाल अर्थात् समस्त प्राणियों का गलन करने वाला हूँ, प्रकाश स्वरूप भगवान् भी मैं हूँ। महादेव, महाज्ञेय एवं महान् महेश्वर भी मैं ही हूँ॥१०२॥

विमुक्तोऽहं विभुरहं वरेण्यो व्यापकोऽस्म्यहम् ।
वैश्वानरो वासुदेवो विश्वतश्चक्षुरस्म्यहम् ॥ १०३॥

मैं विमुक्त हूँ, विभु हूँ, वरण करने योग्य हूँ तथा मैं ही व्यापक हूँ। मैं श्रेष्ठ वैश्वानर एवं वासुदेव हूँ तथा सम्पूर्ण विश्व का चक्षु रूप भी मैं ही हूँ॥१०३॥

विश्वाधिकोऽहं विशदो विष्णुर्विश्वकृदस्म्यहम् ।
शुद्धोऽस्मि शुक्रः शान्तोऽस्मि शाश्वतोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम् ॥ १०४॥

मैं विश्व से अधिक हूँ, मैं विश्व का कर्ता विशद विष्णु हूँ, मैं शुद्ध, शुक्र, शान्त स्वरूप हूँ, शाश्वत तथा शिव भी मैं हूँ॥१०४॥

सर्वभूतान्तरात्महमहमस्मि सनातनः ।
अहं सकृद्विभातोऽस्मि स्वे महिम्नि सदा स्थितः ॥ १०५॥

मैं समस्त भूत-प्राणियों का अन्तरात्मा हूँ, मैं नित्य एवं सनातन हूँ। मैं अपनी महिमा में स्थित रहकर सदैव प्रकाशित होता रहता हूँ॥१०५॥

सर्वान्तरः स्वयंज्योतिः सर्वाधिपतिरस्म्यहम् ।
सर्वभूताधिवासोऽहं सर्वव्यापी स्वराडहम् ॥ १०६॥

मैं सभी के अन्त:करण में स्वयं ज्योति रूप में स्थित एवं समस्त प्राणियों का अधिपति हूँ। सभी भूतप्राणी मुझमें ही निवास करते हैं, मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ तथा सभी का सम्राट् हूँ॥१०६॥

समस्तसाक्षी सर्वात्मा सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः ॥ १०७॥

मैं सभी का साक्षी, सर्वात्मा, सब भूतों का गुह्य आशय हूँ, मैं सब इन्द्रियों के गुणों का प्रकाशक हूँ तथा समस्त इन्द्रियों से रहित भी हूँ॥१०७॥

स्थानत्रयव्यतीतोऽहं सर्वानुग्राहकोऽस्म्यहम् ।
सच्चिदानन्द पूर्णात्मा सर्वप्रेमास्पदोऽस्म्यहम् ॥ १०८॥

मैं तीन स्थान (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) से अतीत (परे) हूँ, सभी पर अनुग्रह-अनुकम्पा करने वाला हूँ। मैं सच्चिदानन्द पूर्णात्मा हूँ तथा सभी का प्रेमास्पद हूँ॥१०८॥

सच्चिदानन्दमात्रोऽहं स्वप्रकाशोऽस्मि चिद्घनः ।
सत्त्वस्वरूपसन्मात्रसिद्धसर्वात्मकोऽस्म्यहम् ॥ १०९॥

मैं सच्चिदानन्द मात्र हूँ एवं स्वयं प्रकाशमान चेतन घनस्वरूप हूँ। मैं सत्य स्वरूप, सन्मात्र (सत्यस्वरूप), सिद्ध तथा सभी की आत्मा हूँ॥१०९॥

सर्वाधिष्ठानसन्मात्रः स्वात्मबन्धहरोऽस्म्यहम् ।
सर्वग्रासोऽस्म्यहं सर्वद्रष्टा सर्वानुभूरहम् ॥ ११०॥
एवं यो वेद तत्त्वेन स वै पुरुष उच्यत इत्युपनिषत् ॥

समस्त (प्राणियों का) आधार स्वरूप, सत्य स्वरूप, सभी के बन्धन को हरने (काटने) वाला, सबको अपना ग्रास बनाने वाला, सभी को देखने वाला और सभी का अनुभव रूप मैं ही हूँ। जो इस प्रकार तत्त्व का ज्ञाता है, वही पुरुष कहा जाता है, इस प्रकार की यह उपनिषद् (रहस्य) विद्या है॥११०॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

शान्तिपाठ

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ इति ब्रह्मविद्योपनिषत् ॥

॥ ब्रह्मविद्या उपनिषद समात ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥